

तप : जीवन शोधन की प्रक्रिया

- मुनि श्रीचन्द्र

जिस वस्तु से हम परिचित नहीं होते उसके प्रति हमारा अनुराग नहीं होता । अनुराग परिचय के बाद हो सकता है । तप के प्रति हमारा अनुराग तभी बढ़ेगा जब हम उससे परिचित होंगे ।

तप एक छोटा-सा शब्द है । दो अक्षरों का, वह भी लघु अक्षरों का । इसकी शब्द रचना जितनी लघु है इसका कार्य उतना ही महान है । अणु से कई गुना शक्ति इसमें है । इसमें अनंत ज्ञान, अनंत शक्ति आत्मा का स्वरूप और परमात्म-पद प्राप्त किया जा सकता है ।

जैसे-अणुशक्ति का दूरुपयोग करने वाला संहार भी कर सकता है, लाखों व्यक्तियों को प्राण-रहित कर सकता है वैसे ही तप से प्राप्त शक्ति के द्वारा एक स्थान पर बैठा मानव १६^१/_३ जनपदों को भस्म कर सकता है । इससे स्पष्ट है कि तप में अणु से भी कई गुना शक्ति है । शक्ति अपने आप में शक्ति है । उसका दुरुपयोग करना शक्ति का दोष नहीं, व्यक्ति की उच्छृंखलता है ।

तप का परिचय

जैन धर्म में तप के बारह प्रकार हैं । प्रथम छह प्रकारों को बाह्यतप और अन्तिम छह प्रकारों को आभ्यन्तर तप कहा है । प्रथम चार प्रकार आहार से सम्बन्धित हैं । शेष आठ प्रकारों में साधना की अन्य विधियां हैं । कष्ट-सहिष्णुता, पांच इन्द्रियों का संयम, वासना-विजय, अहं का त्याग, क्रोधजय, प्रायश्चित्त, सरलता, नम्रता, विनय, सेवा, स्वाध्याय ध्यान, ममत्व-त्याग आदि की साधना-विधि तप की परिधि में हैं । यद्यपि साधना-पद्धति में आभ्यन्तर तप बाह्यतप से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । फिर भी काल-प्रवाह से जन मानस आभ्यन्तर तप की अपेक्षा उपवास आदि बाह्य तप का अधिक आचरण करता है ।

इसलिये आज तपस्वी कहने से सीधा बोध उन व्यक्तियों का होता है, जो उपवास करते हैं। सामान्य लोगों में तप के अर्थ की व्यापकता सिमटकर आहार त्याग में रह गई है। इस दृष्टि से उपवास तप का प्रतीक बन गया है। उपवास तप को जैन धर्म में अनशन तप माना गया है।

यूँ कहना चाहिए अनशन तप की साधना में कम से कम उपवास करना होता है। अवमोदरिका तप में भूख से कम खाया जाता है और वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों का अल्पीकरण किया जाता है।

भिक्षाचर्या तप में विविध प्रकार के संकल्प किए जाते हैं। संकल्प पूर्ण होने पर भिक्षा ग्रहण की जाती है, अन्यथा उपवास किया जाता है।

रस परित्याग तप में रस का त्याग किया जाता है। दूध, दही, आदि रस (विगय या विकृति) नहीं खाए जाते या उनकी सीमा की जाती है। आहार सम्बन्धी छोटे-से-छोटा त्याग भी तप है।

तप की परिभाषा

शब्द रचना की दृष्टि से तप शब्द तप धातु से बना है। जिसका अर्थ है तपना।

निरुक्त की दृष्टि से आचार्य अभयदेवसूरी ने तप शब्द का निरुक्त किया है -

‘रस-रूधिर-मांस-मेदास्थि-मज्जा-शुक्राण्यनेन तप्यन्ते कर्माणि वाशुभानीत्यतस्तपो नाम निरुक्तः।’

जिस साधना के द्वारा रस, रूधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तप जाते हैं, सूख जाते हैं अथवा अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, जल जाते हैं उसे तप कहते हैं। प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य मलयदेवसूरि ने कहा है -

‘तापयति अष्टप्रकार कर्म इति तपः।’

जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता है. वह तप है। ताप का अर्थ है उष्णता। उष्णता ठोस को द्रव करती है। धातु को पिघलाना हो तो उसे ताप के द्वारा ही पिघलाया जा सकता है। आत्मा के साथ गाढ़ रूप से चिपके हुए कर्मों का सम्बन्ध विच्छेद करना हो तो वह तप के द्वारा ही किया जा सकता है।

भगवती सूत्र में कर्मों को सूखे घास की उपमा दी गई है। जैसे सूखे घास को अग्नि क्षण-भर में जला डालती है वैसे ही तप रूपी अग्नि कर्मों को भस्म कर डालती है। चूर्णिकार जिनदासगणी महत्तर भी यही परिभाषा देते हैं -

‘तवो णाम तावयति अट्टविंह कम्मगंठि
नासेतिति वुत्तं भवइ।’

जो आठ प्रकार की कर्म-ग्रंथियों को तपाता है, नाश करता है, वह तप है।

जैन धर्म में तप का बहुत बड़ा स्थान है। यह मोक्ष प्राप्ति के चार साधनों में से एक साधन माना गया है। फिर भी तप करना अनिवार्य नहीं है। एक व्यक्ति दो मास का तप (६० दिन का उपवास) कर सकता है। दूसरा व्यक्ति एक उपवास भी नहीं कर सकता। दूसरे व्यक्ति के लिए जैन धर्म में अनिवार्यता नहीं है कि उसे लम्बे उपवास करने ही चाहिए अन्यथा मुक्ति नहीं होगी। न तो लम्बे उपवासों की अनिवार्यता है और न एक-दो दिन के उपवास की भी। तप करने वालों के लिए भगवान ने विवेक दिया है कि अपनी शारीरिक शक्ति को तोलकर तप साधना में कदम उठाना चाहिए।

बलं धामं च पेहाए, सद्धामारोग्य मप्पणो।

खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए।।

अपना शरीर बल, मन का बल, श्रद्धा, आरोग्य, क्षेत्र और समय आदि को समझ कर तप आदि धार्मिक प्रवृत्ति में अपने को जोड़ना चाहिए।

तपस्या में शरीर-बल तो चाहिए ही, साथ में मन का बल भी होना चाहिए। शरीर-बल है और मन का बल नहीं है तो व्यक्ति तप करने में हिचकिचाएगा। शरीर का बल पूर्ण नहीं है, लेकिन मन की दृढ़ता का बल है तो वह साहस के साथ तत्पश्चर्या में अपने को लगा देगा।

जिस व्यक्ति को उपवास करने से वमन होता हो, भूख से व्याकुलता बढ़ती हो, जी घबराता हो, पित्त का प्रकोप अधिक होता हो, मन में संक्लेश बढ़ता हो, मानसिक परिणामों में उतार-चढ़ाव आता हो, सहयोगियों को अनिच्छा सेवा देनी पड़ती हो, वैसी स्थिति में तप सोच-समझकर करना चाहिए।

प्रज्ञापनासूत्र के टीकाकार मलयगिरी ने कहा है -

तावदेव तपः कार्य, दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत् ।

येन योगा न हीयन्ते, क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च ॥

वैसा ही तप करना चाहिए जिससे मन में दुर्ध्यान न बढ़े, योगों की हानि न हो और इन्द्रियां क्षीण न हों ।

मरणसमाधि में भी इसी आशय का एक श्लोक कहा है -

सोणाम अणसणो तवो, जेण मणो ५ मंगलं न चिंतेहि ।

जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा न हायंति ॥

वही अनशन तप श्रेष्ठ है जिससे मन अमंगल (अशुभ) चिंतन न करे, इन्द्रियों की हानि न हो और योगों की आवश्यक कार्य में क्षति न हो । फलित की भाषा यही है कि तप करना चाहिए परन्तु उसमें न तो अनुकरण होना चाहिए और न अपनी शक्ति का अतिक्रमण ही होना चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार तप की साधना अधिक से अधिक करनी चाहिए । विवेक के बिना किया गया तप ताप, संताप और परिताप बन जाता है जिससे आत्मिक शान्ति और समाधि नहीं मिलती । जो व्यक्ति अपनी शक्ति को बिना तोले या उसकी उपेक्षा करके तप करते हैं वे तप की प्रतिष्ठा को स्थापित न कर उसकी अप्रतिष्ठा बढ़ाते हैं, विवेकपूर्वक तप करने वाला जैन शासन की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, स्वयं भी लाभान्वित होता है और तप की भी गरिमा बढ़ाता है ।

भगवान ने कहा - 'णो पूयणं तवसा अवहेज्जा ।' पूजा-प्रतिष्ठा के लिए तप मत करो । पूजा और प्रतिष्ठा तो स्वयं मिलने वाली है, वह कहां जाएगी ? धान्य के साथ भूसा भी होता है धान्य के उद्देश्य से खेती करने वाला धान्य के साथ भूसा भी पाता है । भूसे के लिए खेती करने वाला बुद्धिमान नहीं कहलाता । भगवान महावीर ने उस तप का निषेध किया, जो इस लोक की कामना (ऋदि-सिद्धि के लिए), परलोक की कामना (स्वर्ग, इंद्रपद आदि की प्राप्ति के लिए) या यश, कीर्ति और प्रतिष्ठा के लिए तप करते थे । उन्होंने एक ही उद्देश्य से तप का विधान किया, वह है निर्जरा, कर्म बंधन से मुक्ति, आत्म शुद्धि ।

प्रवृत्ति के साथ परिणाम जुड़ा रहता है । कोई भी प्रवृत्ति परिणाम शून्य नहीं होती । भविष्यद्रष्टा होते हैं वे परिणाम को देखकर प्रवृत्ति करते हैं । परिणाम के आधार

पर ही प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया जा सकता है। तप करने वाला पहले सोचता है कि तप का फल क्या होगा ? गौतम स्वामी ने भी भगवान महावीर से जिज्ञासा की थी कि भगवन् तप करने से जीव को क्या फल मिलता है ?

भगवान ने उत्तर दिया – गौतम ! ‘तवेण वोढाणं जणयइ ।’ जीव तप से कर्मों का व्यवदान करता है, कर्मों की निर्जरा करता है, कर्मों का क्षय करता है।

तुंगिया नगरी के श्रमणोपासक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणों के पास जाकर पूछते हैं - तवेणं भते किं फले ? भगवन ! तप करने से क्या फल मिलता है ? स्थविर श्रमणों ने उत्तर दिया – तवे वोढाण फले । तप का फल है व्यवदान । अनादि काल से आत्मा के कर्म चिपके हुए हैं । कर्मों का आवरण आत्मा पर छाया हुआ है । तप से आवरण दूर हटता है । आत्मा अपने रूप में प्रकट होती है । जैसे बादलों से ढका हुआ चन्द्रमा बादलों के हटने से दिखाई देता है ।

जैन आगमों में अनेक स्थानों पर तप के फल के विषय में एक ही बात कही गई है – वह है आत्मशुद्धि ।

आचारंग-निर्युक्ति में भद्रबाहु स्वामी ने यही कहा है –

‘जह खलु मइलं वत्थं, सुज्झइ उदगाइएएहिं दव्वेहिं ।

एवं भावुवहाणेण सुज्झए कम्मभट्टविहं ।’

जैसे मलिन वस्त्र जल आदि द्रव्यों से स्वच्छ निर्मल होता है वैसे ही भावपूर्ण उपधान (बाह्याभ्यन्तर तप) से आत्मा कर्ममल से शुद्ध होती है । शोधक द्रव्य शक्तिशाली होता है तो वस्त्र का सघन और चिकना दाग भी मिट जाता है वैसे ही तप से न केवल इस जन्म के ही कर्म मल दूर होते हैं अपितु जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्म भी तप से क्षीण हो जाते हैं ।

साधना का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है तप । तपस्या केवल भूखे रहने का नाम नहीं है, इस प्रक्रिया में व्यक्ति सलक्ष्य अध्यात्म भावना से शरीर को तपाता है, इन्द्रिय संयम करता है, कषायों को उपशमित करता है, कर्म संस्कारों के निर्जरण का पुरुषार्थ करता है । तपस्या जीवन शोधन की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है ।